बादलों

की

गोद में

कृपा

प्रकाशक—
शिरोमणि पब्लिशिंग हाउस,
फ़ैज़ाबाद ।

प्रथम संस्करण

मूल्य २) रु०

मुद्रक—
शिरोमणि आर्ट प्रेस,
फ़ैज़ाबाद ।

कवि

समर्पण

पूज्य पं० अमरनाथ झा को

जो कुछ न कहते

हुए भी, बहुत

कुछ कहते

रहे !

भूमिका

कृपाशंकर शर्मा एक नौजवान और भावुक कवि हैं। "बादलों की गोद में" उनकी कविताओं का पहला संग्रह है। कौन है जिसका दिल अपनी पहली कृति को संसार के सामने रखने में दुविधाओं और आशाओं से बेचैन न होता हो ?

मैंने इनकी कविताओं को जब वह कायस्थ पाठशाला कालेज के छात्र और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे, सुना था। तब भी मेरे ऊपर उनका अच्छा असर पड़ा था और मुझे लगता था "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"। अब वह पौधा बढ़ा है, इसमें कलियाँ और फूल विकसने शुरू हुए हैं। सुहाने भविष्य की झलक दिखाई देती है।

कृपाशंकर की कविता में कोमलता है, सरलता है, शब्दों, पद-समूहों के चुनाव में माधुर्य है, संगीत की सुरीली ध्वनि है। कवि के भावों में यौवन का जोश है। उसके हृदय में अनुकम्पा है जो उसके लिए आत्मा और प्रकृति को एक कर देती है। भीतरी और बाहरी दुनियाँ को एक दूसरे का प्रतिबिम्ब बनाती है। उसकी करुणा आँसुओं के निर्झर को, नयनों के नृत्य को, हृदय के आनंद-विषाद को आकाश से गिरते नीर, सूरज और बादलों की आँख-

मिचौनी से उत्पन्न धूप-छाँव, रात के गहन अंधकार और दिन के चमकते उजियाले से मिला देती है।

कवि केवल आत्मा और प्रकृति में एकता नहीं ढूँढ़ता, वह अपने और दूसरे में, व्यक्ति और समाज में, आदमी और मानव जाति में समानता की खोज करता है। जात-पाँत, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन के भेद उसे विह्वल करते हैं। भारत के पुराने आदर्शों में, गांधी जी के पुनीत भावों में उसे संसार का कल्याण दिखाई देता है।

मैं आशा करता हूँ, 'कृपाशंकर की कविता में अनुभव के विस्तार के साथ जीवन के गहरे पानी में पैठ विचारों में गंभीरता आयेगी; ओज और प्रौढ़ता का विकास होगा।

तेहरान

५ अगस्त १९५३

ताराचन्द

भारतीय राजदूत, ईरान

एवं

भूतपूर्व शिक्षा-सचिव, भारत सरकार

कवि के मुख से—

कविता की परिभाषा उतनी ही पुरानी है, जितनी कवि हृदय की भावना! कवि अपनी आंख बन्द करते ही, संसार के कोलाहल से अपने कान बन्द कर लेता है। कवि की भावना तैरने लगती है! कवि अपनी बन्द आंखों से, कोसों दूर तक फैले हुये अंधकार को समेटने लगता है। वह इस अंधकार में लीन हो जाना चाहता है, खो जाना चाहता है, और खो जाता है। तब कविता उसे ढूंढने निकलती है। वह कवि तक दौड़ आती है जैसे मां की ममता बालक तक दौड़ आती हो। कवि अपने इस अंधे-संसार में, एक नूतन संसार का सृजन करता है, जो काल्पनिक होते हुए भी, इस लौकिक संसार से कहीं अधिक सत्य के निकट होता है। उस का सुख अलौकिक होता है। उसका भौतिक-स्वरूप न होते हुए भी, वह सौन्दर्य बिखेरता है।

मैंने कविता को हृदय की एक टीस के रूप में देखा है, एक प्रेरणा समझा है, एक उत्कंठा जाना है, एक जिज्ञासा माना है। यह प्रेरणा की वृत्ति पल भर की होते हुए भी, बहुत देर जी जाती है। इसके जीते ही कवि जी उठता है। और इस प्रेरणा के अन्त होते ही कवि ऐसा ज़मीन पर आता है जैसे किसी ने सातवें आसमान से गिरा दिया हो। कवि की कल्पना कराह उठती है। उसे ऐसा

लगता है जैसे किसी भयंकर ऑपरेशन के बाद उठा हो। होश में आते ही वह अपना सिर पीटने लगता है।

इस होश से कहीं अच्छा वह बेहोश था। आंख खोलते ही, उस के कानों में गूजती हुई लय, आंखों में नाचती हुई तस्वीर, भावों में जगती हुई सुन्दरता, प्राणों में क्रन्दन करती हुई टीस, और ओठों पर आए हुए गीत लोप हो जाते हैं।

कवि को अपनी कविता से उतना ही प्रेम होता है, लाड़ होता है, जितना मां को अपने लाड़ले से। आखिर क्यों नहीं! कवि ने उस का सृजन किया है। उसको जन्म दिया है। उसको जिलाया है। मानों उसने भगवान से होड़ बदी हो कि तुम्हारे मिथ्या-संसार से मेरा काल्पनिक संसार कहीं अधिक सुन्दर होगा।

कवि अपनी पैनी आंखों से, एक ओर सागर की गहराई काटता है, तो दूसरी ओर आकाश की ऊंचाई। वह कभी सागर की लहरों पर खड़ा हो जाता है, तो कभी बादलों की गोद में! वह अपने पंख फैलाते ही, सारी सीमाओं को पार कर लेता है। कवि का हृदय समझना, सागर की थाह लेना है, पहाड़ों का वज़न तौलना है, आकाश को अपने ऊपर ओढ़ना है। कवि एक जागृति-अवस्था है, एक प्रकाश है। मानव के विकास की, मानव के प्रतिभा की, एक लौ है, जो एक बार जल कर जलती (जगती) ही रहती है, बुझ नहीं पाती।

समय और दशा प्रगतिशील है। समय तेज़ी से दौड़ता है। राष्ट्र और समाज की दशा और दुर्बलता, नया वेष ले, नये-मार्ग पर तेज़ी से चल पड़ती है। इन को हथियाने के लिये, कवि भी अपनी गति बढ़ा देता है। वह प्रगतिशील हो जाता है। उसकी कविता प्रगतिशील बन जाती है। वह राष्ट्र में लगी चिनगारियों को देख लेता है। वह समाज में आई हुई नई बीमारी को, समाज का हाथ पकड़ते ही बता देता है। राष्ट्र और समाज, कवि के आंख और कान हैं। अपने आंख कान को कष्ट हो, यह कौन चाहता है। तभी तो कवि राष्ट्र और समाज का विशेष ध्यान रखता है। फलतः कोमल भावनाओं में लिपटा हुआ कवि, प्रेम की आत्मा में झांकने वाला कवि, राष्ट्र की आत्मा में झांकने लगता है। वह राष्ट्र के गीत गाने लगता है। राष्ट्रीय कवि हो जाता है। अपनी कविता में मैंने कोई राजनैतिक दृष्टिकोण या पुट नहीं रक्खा। जो कुछ लिखा है वह राष्ट्रीय–कविता के ही नाते है। और उसमें भी मृदु हास्य निहित (Subtle humour) है।

अनजान पथ पर अकेले चलते चलते, जब राष्ट्र और समाज थक जाते हैं, तो कवि का हाथ पकड़ लेते हैं। महान-कवि, उन्हें दो अल्हड़ बालकों की तरह, हाथ पकड़ कर ले चलता है। महान-कवि पथ-प्रदर्शक ही नहीं, स्वयं पंथ बन जाता है। यही कवि के विकास की, कवि की प्रतिभा की, कवि के भावोद्वेग की, यहाँ तक कि स्वयं कवि की, चरम सीमा है। यहां पर वह आकाश छू लेता है। अब

तक कवि दूसरों की आत्मा में झांक रहा था, अब दूसरे कवि की आत्मा में झांकने लगते हैं। कवि इस अवस्था को वर्षों की लगन और तपस्या के बाद पहुँच पाता है। तुलसी, सूर और कबीर इसके साक्षी हैं। हमारा सारा समाज, उनकी इस अवस्था का साक्षी है।

नंगे समाज की कुरूपता को देख कर, कवि शर्म से अपनी आंखें मींच लेता है। समाज को नंगे सामने आने में शर्म नहीं लगती, पर कवि को उसको देखने में शर्म लगती है। प्रगतिशील कवि समाज की इस नग्नता का, इस कुरूपता का सब को एहसास करा देता है। समाज के बनाने वाले अपने बनाये हुए समाज से, स्वयं अपने आप से घृणा कर उठते हैं। वह समाज की दुर्बलता में अपनी दुर्बलता देखने लगते हैं। उस पर चादर डालना चाहते हैं। यहीं कवि की जीत होती है। वह अपने मुख से यह नहीं कहता कि इस नग्नता को, इस कुरूपता को ढंको, पर और लोग यही कह उठते हैं। कवि के एक इशारे पर समाज दूसरा बाना पहिन लेती है। कवि बाधक बन कर, किसी दुर्बलता पर, कभी बलात्कार नहीं करता। वह उस दुर्बलता को इतनी अधिक दुर्बल दिखा देता है कि वह दुर्बलता अपने जीने के लिये दूसरा वेष धारण कर लेती है।

आज हम स्वतंत्र हैं। हमारा राष्ट्र स्वतंत्र है। कवि स्वतंत्र है। कवि की कविता स्वतंत्र है। आज कवि की आंखें कहीं पर भी गड़ सकती हैं, चाहे वह गरीब की झोपड़ी का आह्लाद हो, जमींदारों की विवशता हो, राजकीय महलों का सूनापन हो, साम्राज्यवाद के कब्रों

की निस्तब्धता हो, या राष्ट्रीय-उमंगों का विवाह हो। आज कवि का हृदय भी बासों उछल रहा है। १५ अगस्त सन् '४७ की रात को, उस के हृदय पर से, उस की भावनाओं पर से, डेढ़ सौ साल से रक्खा हुआ, भारी पत्थर हट गया। उसका कुचला हुआ हृदय कुछ कहना चाहता है, शायद बहुत कुछ कहना चाहता है। जो अब तक रो नहीं सकता था, उसे आज हंसने का मौका मिल गया है। शायद वह इसी दुविधा में है कि पहले हंसे या रोये !

'अमृत-कुटीर'
१८१ ऐलनगंज,
इलाहाबाद।

कृपा शंकर शर्मा,
एम०ए०
साहित्यरत्न।

(१)

कवि वही, जो बादलों की गोद में दिन रात सोता !

बादलों के खींच रेशे,

भाव सम कोमल बना के,

काव्य का जो रूप लादे,

कवि वही, जो बादलों के संग उड़ता, और ऊँचा !

कवि वही, जो बादलों की गोद में दिन रात सोता !

धूल जो खाता धरा पर,

तोड़ता तारे गगन पर,

झाँकता आकाश में वह,

कवि वही, जो बादलों के संग हंसता और रोता !

कवि वही, जो बादलों की गोद में दिन रात सोता !

चन्द्र, तारे गगन से ले,
जो कि कविता–कामिनी के,
रूप को रह रह संजोये,
कवि वही, जो बादलों से होड़ बद, कविता बरसता !
कवि वही, जो बादलों की गोद में दिन रात सोता !

कल्पना के ज़ोर ही से,
नीर भरता बादलों में,
या किसी रीते नयन में,
कवि वही, जग के पुराने चित्र में, जो रंग भरता !
कवि वही, जो बादलों की गोद में दिन रात सोता !

कवि को डरें साम्राज्य सारे,
कवि को डरें नेता बेचारे,
कवि को डरें करते इशारे,
कवि वही, जो भौं सिकोड़े तो समूचा राज्य हिलता !
कवि वही, जो बादलों की गोद में दिन रात सोता !

(२)

मेरा उनसे परिचय इतना,

जितना लहरों का तट से है।

मेरा उनका बस मेल यही,

जितना सरि·का सागर से है॥

जब पंख लगा कर आशा का,

मैं चाह लिये उड़ता फिरता।

तब भाव-गगन में वे मिलतीं,

मेरा उनसे परिचय इतना॥

सपनों से व्याकुल हो कर के,
जब नींद लिये मैं उठ पड़ता ।
तब आँखों में पुतली के मिस,
वे घूमें, बस परिचय इतना ॥

उनकी, उन रीती आखों में,
ये मेरे थमे हुये आँसू,
जब निकले तब मैं जान सका,
मेरा उनसे परिचय कितना ॥

(३)

मेरी नादान तमन्ना को, तुम बहला सकती, बहला दो !

कब कब था मैंने प्यार किया,
कब कब उसका उपचार किया।
मेरे भावों ने प्रथम बार,
मुझ पर है यह एहसान किया ॥

बरसों से सूखे तरु पर, नव-पल्लव आये, आने दो !
मेरी नादान तमन्ना को, तुम बहला सकती, बहला दो !

सूखे सर भी भर जाते हैं,
सूखी सरिता भी उमड़ पड़े।
पा एक सहारा सावन का,
कितने सर-सागर उमड़ पड़े ॥

तुम मेरे रीते-नयनों में, यह घिरते-बादल बरसा दो !
मेरी नादान तमन्ना को, तुम बहला सकती, बहला दो !

मैं बन्द पड़ा था कमल एक,
जिसको खिलने की चाह न थी।
जब समय हुई, और चाह हुई,
तो मुझे मिलन की चाह न थी॥

यौवन जागा, या कमल खिला, इसको अब मत मुरझाने दो!
मेरी नादान तमन्ना को, तुम बहला सकती, बहला दो!

मेरी स्थिर सी आँखों में,
चंचलता यह कैसी आई।
यह चंचलता भी रह न सकी,
यह मादकता कैसी छाई॥

इन मादक-प्यासी आंखों में, तुम अपने प्याले छलका दो!
मेरी नादान तमन्ना को, तुम बहला सकती, बहला दो!

(४)

रात जैसे चन्द्रमा की राह देखे, आज उनकी राह मैं भी देखती हूँ !

पलकें थकीं, जैसे थके,

अनजान राही के कदम ।

पुतलीं थमीं, जैसे थमे,

मजबूर लेते ही कसम ।

पूछ लो, इन पत्थरों की पुतलियों से, राह कबसे देखती हूँ !

रात जैसे चन्द्रमा की राह देखे, आज उनकी राह मैं भी देखती हूँ !

नयन तो हैं आज व्याकुल,

नयन का भी नीर आकुल,

बरसते ही बरसते,

रीते हुये यह सघन-बादल ।

अश्रु की यह लीक साक्षी, नयनकी यह नींद साक्षी, राह कबसे देखती हूँ !

रात जैसे चन्द्रमा की राह देखे, आज उनकी राह मैं भी देखती हूँ !

केश तो अब भी वही है,
उलझने वाला नहीं है,
लटें तो अब भी लटकतीं,
जो संवारे वह नहीं है ।
पूछलो उलझी लटों से, केश की इन रस्सियों से, राह कबसे देखती हूँ !
रात जैसे चन्द्रमा की राह देखे, आज उनकी राह मैं भी देखती हूँ !

ओंठ का वह मुस्कराना,
नयन का वह सहम जाना,
लोप ऐसा हो गया ज्यों,
डूबती नौका का जाना ।
पूछ लेना मुस्कराहट मिल सके यदि फिर कभी, राह कब से देखती हूँ !
रात जैसे चन्द्रमा की राह देखे, आज उनकी राह मैं भी देखती हूँ !

तार टूटे अब न छेड़ो,
बीन बेसुर, अब न खेलो,
अंगुलियाँ वह और ही थीं,
जो सकी थीं, छेड़ इन को ।
उर-तार जर्जर हो उठे हैं, राह फिर भी देखती हूँ !
रात जैसे चन्द्रमा की राह देखे, आज उनकी राह मैं भी देखती हूँ !

(५)

तेरी अलसी अलकें देखूं, या देखूं अपने यौवन को !

तेरी पुतली डूबी रहतीं,
एक तरल-थमी-मादकता में,
मेरी पुतली तो चंचल हैं,
वह आंसू में खेना जाने ।

मैं खेकर हूँ तट पर आया, अब क्या देखूं इन डूबों को !
तेरी अलसी अलकें देखूं, या देखूं अपने यौवन को !

माना कि तुम्हें था प्यार कभी,
माना कि तुम्हें है प्यार अभी,
पर मेरा प्यार न सीमित था,
वह बढ़ता था ज्यों बढ़े नदी ।

निःसीम गगन क्या कभी बंधा, फिर क्यों तुम मुझको बाँध सको !
तेरी अलसी अलकें देखूं, या देखूं अपने यौवन को !

कविता-कानन में डोल रहा,
मेरा यौवन है बोल रहा,
कविता के मिस, छंदों के मिस,
है प्यार मेरा प्रस्फुटित हुआ।

पृथ्वी पर का यह प्यार नहीं, जो प्यार मिला है कवियों को !
तेरी अलसी पलकें देखूं, या देखूं अपने यौवन को !

जग ने तो फीका प्यार किया,
जो कभी रहा, तो कभी गया।
इन गीतों में वह प्यार भरा,
जग पढ़ते पढ़ते झूम गया ॥

इन मृदुल भाव से प्रेरित हो, मैं प्यार सिखाता हूँ जग को !
तेरी अलसी अलकें देखूं, या देखूं अपने यौवन को !

(६)

मेरे गीतों में प्यार भरा, सारे जीवन का राज़ भरा।

इन में लहरों की सिहरन है,
इन में सागर की धड़कन है,
इन में दो दिल की हलचल है,
जिन का न कभी भी साथ हुआ।

मेरे गीतों में प्यार भरा, सारे जीवन का राज़ भरा !

इन में तेरी परिछांई हैं,
जो चन्दा ने भी पाई है,
मेरे दिल की गहराई है,
जो तेरा दिल ही जान सका।

मेरे गीतों में प्यार भरा, सारे जीवन का राज़ भरा !

इन में है काली रात छिपी,
जो सांय सांय अब तक करती,
दहशत ले जिसकी याद छिपी,
औ' छिपी किसी की आतुरता।

मेरे गीतों में प्यार भरा, सारे जीवन का राज़ भरा!

किस से कवि अपना राज़ कहे,
किस से कवि दिल की बात कहे,
इन शब्दों में जो यदि पढ़ ले,
उस को कवि का कुछ राज़ मिला।

मेरे गीतों में प्यार भरा, सारे जीवन का राज़ भरा!

(७)

तुझको क्या मंज़िल बतलाऊँ जब मैं मंज़िल को पा न सका !

मेरे पथ से पूछो उस पर,
मैं कितनी बार चला कब क़ब,
कितनी ठोकर मैंने खाईं,
कैसी बीती थी तब दिल पर ।

अन्दाज़ बताऊँ क्या दुख का, अन्दाज़ लगाया लग न सका !
तुझको क्या मंज़िल बतलाऊँ, जब मैं मंज़िल को पा न सका !

मैंने तब राह बदल डाली,
ज्यों सरिता राह बदल डाले,
नव-मार्ग और भी दुर्लभ,
जो बढ़ने में बाधा डाले ।

किन किन राहों से मैं गुज़रा, यह कहना चाहूँ, कह न सका !
तुझको क्या मंज़िल बतलाऊँ, जब मैं मंज़िल को पा न सका !

मैं नींद लिये था उठ पड़ता,
मंज़िल को ढूढ़ूं सपनों में,
मंसूबे मेरे हिल जाते, जब
स्वप्न छूटते नयनों में।
जब सपने अपने हो न सके, बहते नयनों पर क्या वश था !
तुझको क्या मंज़िल बतलाऊँ, जब मैं मंज़िल को पा न सका !

जितनी ऊँचाई पर जाता,
दिल की गहराई बढ़ जाती,
गहराई में, मैं खो जाता,
तब दिल की थाह न मिल पाती।
एक धुंआ धुंआ सा उठ जाता, जो आखों से बहता रहता !
तुझको क्या मंज़िल बतलाऊँ, जब मैं मंज़िल को पा न सका !

जब मैं थक कर के चूर हुआ,
तो मंज़िल का आभास मिला,
मैं नयन मूंद कर बैठ गया,
तो मंज़िल के मैं पास मिला।
इन आँखों में तू आँख डाल, शायद मंज़िल का राज़ छिपा !
तुझको क्या मंज़िल बतलाऊँ, जब मैं मंज़िल को पा न सका !

(८)

मैं तेरे सपनों में खोया,
ज्यों चन्दा खोये मेघों में,
या काजल खोये नयनों में।

मैं तेरी बाहों में सोया,
ज्यों खुशबू सोये फूलों में,
या ग़दर सो रहा भूखों में।

मैं तेरी अलकों में खोया,
ज्यों कवि खो जावे भावों में,
या नर्तन खोये रागों में ।

मैं सिहरन लेकर डोल रहा,
ज्यों मृगया डोले कुंजों में,
या आँसू डोले नयनों में ।

ऐसा मैं तुझमें खोया,
ज्यों शबनम खोये लहरों में,
या लहरें खोवें सागर में ।

(६)

तेरी वीणा पर सुमधुर, मैं गीत सुनाता जाऊँ !

तेरे भावों में सिहरन,

उठती है तो उठने दे।

बिजली सी दौड़ गई जो,

वह बादल बन अपना ले ।

कब कब यों जी उचटेगा, कब कब मैं भाव जगाऊं !

तेरी वीणा पर सुमधुर, मैं गीत सुनाता जाऊँ !

रोमांच हुआ यह कैसा,

मैं क्या जानूं इस सब को ?

हम एक नाव पर बैठे,

तू क्यों तकती फिर मुझको।

मैंने आशय ना जाना, और नहीं जानना चाहूँ !

तेरी बीणा पर सुमधुर, मैं गीत सुनाता जाऊँ !

मेरे पलकों में पानी,
जब जब कोनों में छाया ।
मैंने इतना ही जाना,
कोई मुझ पर है छाया ।
तेरी पलकों में पानी, क्यों आया है, क्या जानूं !
तेरी वीणा पर सुमधुर, मैं गीत सुनाता जाऊं !

यह लहर उठी फिर कैसी,
तूफ़ान उठा यह कैसे ?
उर—सागर चंचल होकर,
यह उफन पड़ा है कैसे ?
तूफ़ान छिपाये अब तक, कैसी थी, मैं क्या जानूं ?
तेरी वीणा पर सुमधुर, मैं गीत सुनाता जाऊं !

यह वीणा जब न रहेगी,
यह स्वर, तब भी गूंजेंगे,
नभ में वह गूंज बसी है,
साक्षी हैं यह सब तारे ।
यह मेरे स्वर में खोये, मैं नभ में इन्हें नचाऊं !
तेरी वीणा पर सुमधुर, मैं गीत सुनाता जाऊं !

(१०)

तेरे नयनों में उलझ गये,
मेरे नयनों के कोर ।
जैसे उलझे चन्द्र किरण में,
चाहत लिये चकोर ॥

या ज्यों उलझे कोई बागी,
घटनाओं में घोर ।
या ज्यों उलझे निर्धन कोई,
बेबसता ले घोर ॥

दिल ही था जो यों उलझ गया,
नयनों में भी उलझन लाया ।
जो अल्हड़पन तेरा था वह,
मेरे नयनों में क्यों आया ॥

तेरी आँखों में मस्ती का,
एक मादकपन छलका करता ।
वे खुमार मुझमें आया,
पलकों में भारीपन रहता ॥

हिरनी सी चंचल पुतली जो,
आंखों ही में कोसों चलती ।
वह आज थमीं, ज्यों नाच थमे,
या पायल की झन्कार थमे ॥

मेरी पुतली तो पहले से,
ही स्थिर अपने आप रहीं ।
तेरी स्थिरता लख करके,
ये पत्थर सी क्यों आज हुईं ॥

तेरी आखों से, किरणों से,
धागे से, जो हैं निकल रहे ।
वह क्यों हैं मुझ को बाँध रहे,
वह क्यों हैं मुझको खींच रहे ?

यह आखें मुझसे दूर करो,
या मेरे इतने पास करो,
तेरी आँखों की गहराई
में पुतली को दूं आज डुबो !

(११)

आज तेरी याद लेकर,
जी रहे अरमान मेरे !

मैं जभी जग से विमुख हो,
प्राण से यह कह रहा था;
गगन गूंजा, तड़ित चमकी,
मैं न जानूं क्या कहा था।
चपल चपला की चमक में,
क्या तुम्हीं थीं पास मेरे।
आज तेरी याद लेकर,
जी रहे अरमान मेरे !

सागर तरंगे बलबला कर,
पास जब मुझको बुलातीं।
मैं जभी बढ़ता उधर,
तब ही तरंगे लौट जातीं।
इन तरंगों में छिपे क्या,
हाथ वे कोमल तुम्हारे।
आज तेरी याद लेकर,
जी रहे अरमान मेरे!

आकाश सूना देख कर,
जब जी बिलखता है, तड़पता।
बादलों में मुंह छिपा लू,
भाव यह रह रह उमड़ता।
उस भाव की बन प्रेरणा,
क्या तुम छिपीं हिय में हमारे।
आज तेरी याद लेकर,
जी रहे अरमान मेरे!

नयन के निस्तब्ध तट पर,
याद आकर रुक गई।

नयन में तब ज्वार आया,
नयन डूबे याद भी।

विकल हो, तट को डुबो,
क्या तुम खड़ी थीं उस किनारे।

आज तेरी याद लेकर,
जी रहे अरमान मेरे !

(१२)

इन उमड़ते बादलों के,
भेद को सखि कौन जाने !

आकाश पूरा नाप डाला,
पांव फिर भी हैं बढ़ाये ।
बोझ क्या ऐसा छिपाये,
रोकने से रुक न पाये ॥
इन आँसुओं के नीर से,
यह हैं विकल, यह कौन जाने !
इन उमड़ते बादलों के,
भेद को सखि कौन जाने !

मेरे हृदय के दाह से,
जो नीर नयनों से बहा था,
बादलों की गोद सूनी पा,
उन्हीं में वह मिला था ।
इन आंसुओं की आग में,
हैं जलद व्याकुल, कौन जाने !
इन उमड़ते बादलों के,
भेद को सखि कौन जाने !

(१३)

कैसे उतारूं मैं सजनि,

फिर आज उनकी आरती !

दीपक लिये कर में खड़ी,

मन में लिये अभिलाष री;

श्वास के आवेग से,

बुझता यह दीपक, हा सखी !

कांपते पग, हिय विकल,

पर वे न आये आज भी।

कैसे उतारूं मैं सजनि,

फिर आज उनकी आरती !

चन्द्र को ले प्रकृति ने,
री व्योम का टीका किया,
तारकों का हार ले, नभ के
गले पहना दिया ।
नयन भी मुरझा चुके,
मैं क्या बिछाऊँ आज री !
कैसे उतारूं मैं सजनि,
फिर आज उनकी आरती !

(१४)

भ्रांति

पयोधि के पुलिन पर,
सैकत सी शैया पर,
पड़ी थी बाला एक,
लेती अंगड़ाइयां —
लहर की सिहरन सी,
हिये में हिलोर सी,
हिल हिल कर,
उठ गिर कर ।

बेसुध सी,
ठगी सी,
चितवन की चोर सी,
शिथिल सी
पड़ी थी
ज्यों कराहती हो आह लोट कर !

राका की रजनी में
रूपसि का, रुचिमय, रुपहला रंग
धुल कर निखरता था
कलाधर के किरण कर-से
ज्योतिर्मय जीवन से ।

शशांक के सहचर,
जग-प्रहरी, नभचर
तारक-दल
बुलबुले सम थे
बयार से विकम्पित
भय में निम्मज्जित
झिलमिल थे करते ।

डूबे को तिनके का सहारा था
अस्थिर से स्थिर बन
नयन उघार कर,
देखा
विपत्ति-पयोद थे विलीन हुए
यह क्या ?
गये कहाँ ??
लील लिये अम्बर की अनंत गहराई ने !
किंवा
आपस में लड़ कर,
बरस पड़े भू पर,
तदनंतर
दृष्टि गई
तुहिन–परिधान में सिमटी मौन तन्वंगी पर,
जो छिपाये थी क्रोड़ में,
समेटे निज अंग में,
बादल को,
बादल के राग को,
राग के भी भीषण निनाद को !

सहस सशंकित हुई ससिकला सी सुकोमल सुकुमार वह,
सिंधु की पुकार सुन,
गर्जन के राग सुन,
लहर तभी एक उठी,
भ्रांति वहीं नष्ट हुई,
शेष रही केवल एक,
सिकुड़न सी सैकत की सेज पर !

(१५)

इस अंधेरी रात में, तुम हो कहाँ, मैं हूँ कहाँ ?

रात गहरी हो रही है,

आँख डूबी जा रही है,

डबडबाती पुतलियाँ,

ढूढ़ें तुम्हें, कैसे कहाँ ?

इस अंधेरी रात में, तुम हो कहाँ, मैं हूँ कहां ?

तिमिर को जब चीर डाला,
तब मिली मुझको विवशता,
पर तुम्हारी विवशता सी
विवशता इसकी कहाँ ?

इस अंधेरी रात में, तुम हो कहाँ, मैं हूँ कहाँ ?

आंख टकराई गगन से,
गगन की गंभीरता से,
नील-नभ में क्या छिपी,
तेरे हृदय की गहनता !

इस अंधेरी रात में; तुम हो कहाँ, मैं हूँ कहाँ ?

निशा जब झकझोर डाली,
बादलों ने नींद त्यागी,
विकल हो कर अश्रु तेरे,
तब कहीं छोड़े यहाँ !

इस अंधेरी रात में तुम हो कहाँ, मैं हूँ कहाँ ?

(१६)

आंसुओं का मोल दे दो, आंसुओं का मोल !

सीप के मोती नहीं यह, जो मिलें हर सिन्धु–तट पर ।

ढूढ़ने पर ना मिलें, जब–तब मिलें यह नयन–तट पर ।

नयन–तट जब डूब जाये, तब बनें यह खुद किनारा ।

नयन तो केवल नयन, यह प्राण को देते सहारा ।

प्राण की वह कंपकंपी इन आँसुओं में जा छिपी ।
झिलमिलाते अश्रु जब, तब झिलमिलाती कंपकंपी ।
फिर भला इन आंसुओं का मोल क्या तुम दे सकोगी ।
अश्रु के संग प्राण भी क्या रख सकोगी, ले सकोगी ।

प्राण ही बस कर सकेंगे, प्राण का यह मोल !
आंसुओं का मोल दे दो, आंसुओं का मोल !!

(१७)

दो दिलों की बात थी, तुमने कही, मैंने सुनी !

व्यग्र कोकिल रो उठी फिर,

कूक कर दम तोड़ती जब,

तब तुम्हारी विकलता को,

मैं समझ पाया कहीं !

कोकिला की कूक में,

क्या विकलता तुमने भरी,

दो दिलों की बात थी, तुमने कही मैंने सुनी !

यह पपीहा बोलता है,

या तेरा दिल रो रहा है,

क्या पपीहा भी कहीं,

आतुर हुआ इतना कभी ?

पी कहाँ की टेर तेरी,

फिर इसी के मिस सुनी ।

दो दिलों की बात थी, तुमने कही, मैंने सुनी !

चाह मिलने की उठी,

बिजली तड़प कर रह गई,

बादलों की गोद में

वह एक पल ना रुक सकी ।

चंचला की तड़प में

क्या करवटें तेरी छिपी !

दो दिलों की बात थी, तुमने कही, मैंने सुनी !

लता भी बाहें उठा

तरु से लिपटने आ रही

ज्यों तुम्हारी याद मेरे

पास बढ़ती आ रही

क्या लता के कंप में

वह कंपकपी तेरी छिपी ?

दो दिलों की बात थी, तुमने कही, मैंने सुनी ?

(१८)

अंतर में जलती ज्वाला,

यह बरसातें तो बाहर ।

मेरी विरहाग्नि बुझेगी,

आंसू की बूंदे पाकर ।

मेघों के रव को सुन कर,

वहीं बन में नाचा है ।

पर परिचित स्वर के बिन यह,

व्याकुल उर तड़प रहा है।

सरिता—सागर बहते हैं
जल-प्लावित हो जाने से,
यह सजल नेत्र सूखे हैं,
निशि-दिन रोते रहने से ।

पीड़ा बढ़ती जब उर में,
तत्काल सहम मैं जाती ।
भीगी पलकों का पानी,
पा अपना हृदय जुड़ाती ।

प्रमुदित सदैव रहती हूँ
जग की आंखों में बन कर
निज दुखड़े को क्या रोऊँ
जो गान समझता जड़ नर ।

जीवन भार सम अब है
तज दूं फिर इसको क्या मैं ?
पर भय है—"क्या मर कर भी
बिलखूंगी इसी विरह में" ?

(१६)

आंसुओं की भेंट लो,

लो यह अमित निधि बावरी !

आकाश सीने पर लिये,

अंगार बेसुध सा पड़ा है

कुछ जले, कुछ अध-जले

बिखरे हुये तारे निशा में

वर्ष बीते, युग गये,

पर नभ निरंतर जल रहा है

ज्यों कि कोई याद में,

जल कर बुझा, बुझ कर जला है

याद पिघले अश्रु बन,

तब तुम संजोना आरती !

आसुओं की भेंट लो,

लो यह अमित निधि बावरी !

सूखने देना न इनको,
रस लिये अनुराग का हैं
प्रेम की स्मृति लिये,
लघु सरित यह बहती यहाँ हैं।
एक सरिता सूखते ही
व्योम से गंगा बरसती
व्योम छूऐगा धरा को,
यदि अश्रु सूखा एक भी।
जल-विन्दु इस को ना समझ
यह है अमर-अनुराग-श्री !
आसुओं की भेंट लो
लो यह अमित निधि बावरी !

(२०)

विरह की यह वेदना

मिटती-उमड़ती फिर उठी !

शांत सागर था छिपाये

गोद में लहरें हठीलीं

बन गईं तूफान वह सब

एक कम्पन जो उठी

हिय बना है सैंकड़ों

कम्पन मिलाने पर कहीं !

विरह की यह वेदना

मिटती उमड़ती फिर उठी !

चांदनी ने अश्रु पोंछे
नक्षत्र जब थे झिलमिलाये
क्या मुझी सा विकल है नभ
नित्य रह रह अश्रु ढाये
मुझ अभागे को न मिल पाई
सहायक चांदनी भी !
विरह की यह वेदना
मिटती-उमड़ती फिर उठी !

आज मैं व्याकुल विरह से
जगत व्याकुल है कलह से
राष्ट्र आतुर हैं परस्पर
एक संशय और भय से
अवहेलना किसकी हुई
क्यों कांपती सारी मही
पूछ लो अपने हृदय से
टीस भी ना उठ सकी !

(२१)

किस के विरह का गीत अविरल, खींचता मुझको प्रतिक्षण !

शून्य के उस पार से है

आ रहा मुझको रुलाने

पवन का उच्छ्वास बन कर

भर रहा है दीर्घ श्वासें

वेदने की मूक कल कल, हो गई क्या आज बेकल !

किस के विरह का गीत अविरल, खींचता मुझको प्रतिक्षण !

गान तेरा रूप धर कर

आ रहा विस्मृति जगाने ।

दूर हूँ, पर पास भी हूँ

भेद यह आया बताने ।

ज्यों कि तट से दूर, फिर भी पास है, बहती लहर !

किस के विरह का गीत अविरल, खींचता मुझको प्रतिक्षण !

चन्द्र भी निज किरण-कर से
पोंछता दृग–विन्दु मेरे
चांदनी भेजी यहाँ क्या
आज मेरे दुख बंटाने ।
क्या चांदनी पीली पड़ी, मेरा तनिक सा दुख बंटा कर !
किस के विरह का गीत अविरल, खींचता मुझको प्रतिक्षण !

बुझे दीपों को जलाकर
रात मेरे पास आई
खोज लूं मैं बादलों में
यदि छिपी हो तुम वहाँ भी ।
दामिनी को देख तेरी याद फिर आई उभर !
किस के विरह का गीत अविरल, खींचता मुझको प्रतिक्षण !

(२२)

बिछुड़न के यह क्षण अमर रहें,

कुछ खोता हूँ, कुछ पाता हूँ ।

अन्तर में, अन्तर की गति में,

अरमान मचलते पाता हूँ ।

नन्हें नन्हे अरमान मेरे,

ये नन्ही नन्ही आशाएं

इस तरह पालते प्यार तेरा,

ज्यों आहत मृग कोई पाले ।

मेरी तड़पन है आग लिये
लपटें जिसका जलना जानें
मेरे एकाकीपन को
सागर की नीरवता जानें ।

मेरी आखों की स्थिरता
मेरी इन आखों का वहना
दुनिया की आखें क्या जानें
क्या है जीना, क्या है मरना ।

इन क्षणिक क्षणों की छाया में
इस व्याकुलता, विह्वलता में
जीवन की गहराई पाई,
मैंने इन गहरी आहों में ।

इन अरमानों को जाने दू
तड़पन को यों मिट जाने दूं
वह सुख ही क्या ऐसा सुख है
जो यह जीवित-क्षण जाने दू ।

(२३)

कौन कहता है मिलन तुम से, फिर कभी ना हो सकेगा !

नींद में तुम, स्वप्न में तुम

और मुझ में तुम बसी हो

तुम छिपी इन आंसुओं में,

भाव बन कर जो छिपी हो

यह स्वप्न, आंसू, सांस जब तक, मिलन तो होता रहेगा !

कौन कहता मिलन तुम से, फिर कभी ना हो सकेगा !

नयन मूंदूं तो मिलो तुम
पुतलियों में क्या छिपीं तुम
पलक के यह द्वार प्रतिपल
बंद कर आतीं यहाँ तुम !
दुर्ग रूपी इन दृगों में, मिलन तो होता रहेगा !
कौन कहता मिलन तुम से, फिर कभी ना हो सकेगा !

गुनगुनाता हूँ जभी मैं
भाव बन तुम दौड़ आतीं
गीतमय जब भाव होते
गीत तब तुम आप बनती ।
गीत जब तक यह रहेंगे, मिलन तो होता रहेगा !
कौन कहता मिलन तुमसे, फिर कभी ना हो सकेगा !

मिलन को जब व्यग्र होता,
शिल्पकारी भी अकेला
पत्थरों को रूप देता
मूर्ति को वह प्राण देता
वह मिलन की चाह मुझमें, मिलन फिर क्यों कर न होगा !
कौन कहता मिलन तुमसे, फिर कभी ना हो सकेगा !

(२४)

नभ में क्यों व्याकुलता छाई, जो बदली बन कर छहराई !

नभ का विषाद क्यों उमड़ पड़ा,

जो बादल बन कर घुमड़ उठा

बादल में भी एक टीस उठी,

जो बिजली बन कर कसक उठी

क्या मेरे उर की व्याकुलता, नभ के उर में आकर छाई !

नभ में क्यों व्याकुलता छाई, जो बदली बन कर छहराई !

वह काली रातें याद मुझे,
जब नभ ने अश्रु बहाये थे
पौ फटने की देर न थी
शबनम ने आँसू ढाये थे
जग था जिसको शबनम समझा, वह गीली आँखों का पानी !
नभ में क्यों व्याकुलता छाई, जो बदली बन कर छहराई !

वह चमक–दमक सब आज गई
तारों का वह श्रृङ्गार गया
सूना सूना सा पड़ा हुआ
क्या विरह–ज्वाल में नभ झुलसा
नभ पर क्या गुज़रे, मैं जानूं, या जाने नभ की चाँदनी !
नभ में क्यों व्याकुलता छाई, जो बदली बन कर छहराई !

(२५)

किस खुशी में आज मैं हूँ झूमती !

किस खुशी में पवन मुझको चूमती !!

आंसुओं में थी पली मैं भी कभी,

आंसुओं की बाढ़ थी, जब बढ़ रही,

रोकने को जब बढ़ी तो खुद बही ।

उन दिनों की याद क्यों कर भूलती,

उन दिनों की याद करके झूमती ।

किस खुशी में आज मैं हूँ झूमती !

किस खुशी में पवन मुझको चूमती !!

विरह की वह आग मुझ में भी जली,

मैं न जल पाई मगर वह जल गई

जैसे कि नभ से आंधियां जितनी उठीं,

वे उजाड़ें सैकड़ों घर, एक केवल नभ नहीं

उन दिनों की याद करके झूमती

किस खुशी में, आज मैं हूँ झूमती !

किस खुशी में पवन मुझको चूमती !!

आकाश तो अब भी वही, बादल वही,
पर इशारे कर रहे, कुछ और ही,
तब बात ही कुछ और थी, अब और ही
तब उमड़ते अश्रु के यह साथ ही
उन दिनों की याद करके झूमती
किस खुशी में आज मैं हूँ झूमती !
किस खुशी में पवन मुझको चूमती !!

मैं सहारा ढूंढ़ता था जब कभी,
तब सहारा भागता था दूर ही
ज्यों अभागे से भगे तकदीर भी
उन दिनों की याद अब ना भूलती
उन दिनों की याद करके झूमती
किस खुशी में आज मैं हूँ झूमती !
किस खुशी में पवन मुझको चूमती !!

(२६)

जग के समुन्दर में पड़ा तू क्यों थपेड़े खा रहा !

दुख पा रहा !!

इस समुन्दर में छिपे

मगर-मच्छ औ' घड़ियाल भी,

इस जगत में देख लो तुम

कपट-लोलुप-डाह भी

यह कहानी, क्या न जानी, जग सभी को खा रहा !

दुख ढा रहा !!

जग के समुन्दर में पड़ा तू क्यों थपेड़े खा रहा !

दुख पा रहा !!

लहर भीषण जब उठी,
तब डूबने तू क्यों लगा
डूबने का डर अगर था,
सिंधु में तू क्यों बहा ।

पांव जब जग में धरे, तो कांपता सा क्यों खड़ा !
तू क्यों डरा !!
जग के समुन्दर में पड़ा तू क्यों थपेड़े खा रहा !
दुख पा रहा !!

इस सिंधु में यदि विष भरा,
तो अमरता की बूंद भी ।
कल तक चला तू कांच पर,
तो आज कलियों पर सही ।

ढूंढ़ ले यदि ढूंढ़ सकता, प्यार जग में भी भरा !
तू प्यार पा !!
जग के समुन्दर में पड़ा तू क्यों थपेड़े खा रहा !
दुख पा रहा !!

मानव हृदय में द्वेष है तो,
प्यार भी तो जी रहा ।
प्यार को यदि तू जगाने,
द्वेष क्यों कर उठ सका ।

अपने हृदय से पूछ ले तू, प्यार को है क्या मिला !
बस प्यार क्या !!

जग के समुन्दर में पड़ा तू, क्यों थपेड़े खा रहा !
दुख पा रहा !!

(२७)

मेरी पीड़ा तेरे दुख सी, क्या यहीं प्रेम का जन्म हुआ !

तेरी पलकों में भारीपन,
यौवन का, यौवन के मद का;
मेरी पलकें भी भारी क्यों,
क्या बोझ लिये रूपसि तेरा।
जब दोनों की पलकें भारी, घुटनों के बल क्या प्रेम चला !
मेरी पीड़ा तेरे दुख सी, क्या यहीं प्रेम का जन्म हुआ !

बादल की गोदी में जाकर,
मैं गिनता नभ के तारों को;
तो बीच राह में तुम मिलतीं,
गिनती आती ताराओं को।
जब संग-संग तारे हम गिनते, तब शिशु बनकर क्या प्रेम चला !
मेरी पीड़ा तेरे दुख सी, क्या यहीं प्रेम का जन्म हुआ !

जब दिन पहाड़ से लगते हैं,
मुश्किल से लांघे जाते हैं
जब रात काल सी लगती है,
जब आंख मींच, हम, जगते हैं,
जब यही न जानें करना क्या, तब तरुण-प्रेम क्या बहक रहा !
मेरी पीड़ा तेरे दुख सी, क्या यहीं प्रेम का जन्म हुआ !

जब दिल ज़बान पर आता है,
औ' जिह्वा कट सी जाती है
जब दुनिया से डर लगता है
जब झिझक पांव फैलाती है,
जब शूरों के भी ओंठ सिलें, तब प्रेम युवा हो निकल पड़ा !
मेरी पीड़ा तेरे दुख सी, क्या यहीं प्रेम का जन्म हुआ !

जब प्रेम पनप कर बड़ा हुआ,
मजबूरी को, मजबूर किया,
प्राणों का संबल जभी लिया
तब विजय हुई औ' मिलन हुआ।
वह मिलन प्रेम का ऐसा था, कि प्रेम कभी ना वृद्ध हुआ !
मेरी पीड़ा तेरे दुख सी, क्या यहीं प्रेम का जन्म हुआ !

(२८)

बापू

ओ आज़ादी की अमर आस !

निर्धन के धन सम तुम पुनीत,
बेकस की आहों के प्रतीक,
ओ आत्मा के प्यारे शहीद,
तुम उठे जगाने को संसार !
सुलाने को रिपु बल फिर आज !
ओ आज़ादी की अमर आस !

जब भारत-भाग्य सरित सूखी,
थी तड़पी प्यासी आज़ादी,
तब गरजे बरसे मेधावी
मिटा कर और बढ़ाने प्यास
यह आज़ादी की अमिट प्यास !
ओ आज़ादी की अमर आस !

ज़ुल्मों ने चूसा रक्त सभी
जब तुमने खिंचतीं खाल लखीं,
हो कुपित अहिंसा-असि खींची
डुबो कर सत्य-गरल कर में आज
अरे जग जाने सत्य प्रभाव !
ओ आज़ाद की अमर आस !

झट टूट पड़े अपमानों पर,
हिला दी पूंजीपति की जड़,
ओ रण-प्रवीण, ओ हिंसक-अरि
कराया है भारत आज़ाद,
मिटाया फिर अपने को हाय !
ओ आज़ादी की अमर आस !

(२६)

क्रांति के जब गीत गाये, क्रांति से क्यों डर गया तब !

आग का जलना सहज है,

पर कठिन उसका बुझाना ।

क्रांति का करना सहज है,

पर कठिन उसका निभाना ।

खून का तब रंग जाना, खून के कतरे गिरे जब !

क्रांति के जब गीत गाये, क्रांति से क्यों डर गया तब !

सहज है घर का जलाना,
सहज राष्ट्रों का मिटाना।
पर नहीं है खेल कोई,
राष्ट्र को फिर से जिलाना॥
आयु पूरी बीत जाये, राष्ट्र का निर्माण हो तब !
क्रांति के जब गीत गाये, क्रांति से क्यों डर गया तब !

मानव प्रवृत्ति ही यही है,
को बदलती ही रही है।
हर कदम पर कह रही वह,
आज जो, वह कल नहीं है॥
उत्थान-पथ पर जो चला, वह पंथ से क्यों जायगा डर !
क्रांति के जब गीत गाये, क्रांति से क्यों डर गया तब !

क्रांति हर दिल में बसी है,
क्रांति मानव की सगी है।
क्रांति की कोरी दुहाई,
दो न, वह होती रही है॥
क्रांति तो भूकंप है, जो आ गया आया समय जब !
क्रांति के जब गीत गाये, क्रांति से क्यों डर गया तब !

(३०)

इस ओर खड़ा है महल एक,

उस ओर मढ़ैया छाई है !

यह जुल्मों की तह ने पाटा,

हर कोने में मातम छाया,

वह गिरते-पड़ते आँसू की

घटती बढ़ती परिछाई है !

इस ओर खड़ा है महल एक,

उस ओर मढ़ैया छाई है !

यह आंख गड़ाये आलम पर,
वह आस लगाये ज़ालिम पर,
यह ऐयाशी की कब्र खड़ी
वह दुर्दिन की परिछाईं है !
इस ओर खड़ा है महल एक,
उस ओर मढ़ैया छाई है !

यह दफ़न किये कितनी आहें,
भूखे-नंगों की फ़रियादें,
वह पड़ी पेट में पाँव दिये,
कंपती वाली दुखिया की है !
इस ओर खड़ा है महल एक,
उस ओर मढ़ैया छाई है !

यह डसे खड़ा सब धन दौलत,
फिर फिर कर उगले ज़ुल्म-ज़हर,
वह बहते घाव कुरेद रही,
मृत्यु ने आस दिलाई है !
इस ओर खड़ा है महल एक,
उस ओर मढ़ैया छाई है !

(३१)

राष्ट्र मांगे स्वेद बूंदें, रक्त की बूंदें नहीं !

राष्ट्र अपना, राज्य अपना,
खून फिर क्यों कर बहे ।
खून खौले, देख जिनको,
वे फिरंगी सब गये ॥
राष्ट्र की मजबूरियाँ, मजबूरियाँ तेरी हुई !
राष्ट्र मांगे स्वेद-बूंदें, रक्त की बूंदें नहीं !

विश्वास तेरा, आज तुझसे,
राष्ट्र देखो मांगता ।
ज्यों कि अबला का सहारा,
सिंदूर-बिंदु ताकता ॥
विश्वास पाकर राष्ट्र के पग डगमगाते हैं नहीं !
राष्ट्र मांगे स्वेद बूंदें, रक्त की बूंदें नहीं !

कुछ और दिन तू सहन कर ले,
यह असह्य, रोती गरीबी ।
सब ही जुटे हैं खत्म करने,
चन्द लोगों की अमीरी ॥
सब रहेंगे एक से हो, या कि फिर रहना नहीं !
राष्ट्र मांगे स्वेद--बूंदे, रक्त की बूंदे नहीं !

इन पांच सालों में अगर,
आकाश हम ना छू सके ।
मानते सब हैं मगर हम,
बहुत कुछ ऊँचे उठे ॥
राष्ट्र सीखें बोलना, इन पांच वर्षों में कहीं !
राष्ट्र मांगे स्वेद- बूंदे, रक्त की बूंदे नहीं !

सब का पसीना जब बहे,
एड़ी छुये, जब वह कहीं ।
नव-राष्ट्र का निर्माण हो,
जाये, गरीबी तब कहीं ।
मानव तुम्हारा यह पसीना, क्या बहा, यों ही कहीं !
राष्ट्र मांगे स्वेद--बूंदे, रक्त की बूंदे नहीं !

वह दिया जहाँ टिमटिमा रहा, उस झुरमुट में भी जीवन है !

इन ऊँचे ऊँचे महलों में,

हर चीज़ खरीदें रुपयों से ।

यह प्यार बेचते रुपयों से,

यह लाज खरीदें रुपयों से ॥

जो दूर रहें इस धन-मद से उस बस्ती में भी जीवन है !

वह दिया जहाँ टिमटिमा रहा, उस झुरमुट में भी जीवन है !

जो बन ठन करके निकल पड़ी,

महलों में करते प्यार उसे ।

बहला सकती, बहका सकती,

दुनिया कहती, वह प्यार करे ॥

जो प्यार करे, पर कह न सके, वह प्यार देख बस्ती में है

वह दिया जहाँ टिमटिमा रहा, उस झुरमुट में भी जीवन है !

जितना हो ऊँचा महल खड़ा,
उतना छल कपट भरा उसमें ।
ज्यों ज्वालामुख जितना ऊँचा,
उतनी बरबादी है उस में ॥
जो छल का नाम नहीं जाने, उस बस्ती में भी जीवन है !
वह दिया जहाँ टिमटिमा रहा, उस झुरमुट में भी जीवन है !

जो मद पीकर मद होश हुये,
मदहोश हुये जो प्यार करें ।
इस पल इस को, उस पल उसको,
यह महलों में ही प्यार मिले ॥
मर मिटने को जो प्यार करें, वह प्यार पला बस्ती में है,
वह दिया जहाँ टिमटिमा रहा, उस बस्ती में भी जीवन है !

दिल बहलाने को महलों में,
पायल बजते, घुंघरू बजते ।
कितने सितार के तार बजें,
एक दिल के तार नहीं बजते ॥
उर-वीणा के सब तार बजें, उस बस्ती में भी जीवन है !
वह दिया जहाँ टिमटिमा रहा, उस बस्ती में भी जीवन है !

(३३)

कमल कहता है सरोवर से हमें जल में डुबा दो,
सर कहे सूरज—किरण से, तुम मुझे अब तो सुखा दो,
किरण कहती मेघ-दल से, सूर्य को अब तो छिपा लो,
मेघ कहते नील-नभ से, तुम हमें ऊपर उठा लो !

आकाश कहता है धरा से तुम मुझे भू पर सुला दो,
पृथ्वी कहे अब तो मुझे आकाश से कोई मिला दो।
क्या वेदना ऐसी लिये जो कसकती सी बात कहते,
संसार क्या ऐसा हुआ जो आज रहते प्राण डरते।
नंगी गरीबी देख कर के, प्राण क्या सूखे सभी के,
या कि पृथ्वी जोतने वालों की आतें देख कर के।
या कि मोटे सेठ की करतूत काली देख कर के,
या कि मानव सैकड़ों मजबूरियां तेरी परख के!

हर व्यक्ति नव–निर्माण का संदेश लाता है नया !

बादल नया, नव-जोश से
होता गगन तट पर खड़ा ।
उस पल अवनि पर दीखता,
मानों कि अम्बर अब गिरा ॥

धरती उमंगें ले कहे, सतरंग धनु, गिरजा यहाँ !
हर व्यक्ति नव–निर्माण का संदेश लाता है नया !

यदि उमंगे ही न होतीं
तो कहाँ से भाव आते ।
भाव नूतन यदि न होते
जीव के पग डगमगाते ॥

अग्रसर अनजान पथ पर, जीव होता क्यों भला !
हर व्यक्ति नव–निर्माण का सन्देश लाता है नया !

जीव तो सब एक से,
पर भाव उनमें भिन्न हैं ।
ज्यों एक ही जल बह रहा है,
सरि, सरोवर, सिंधु में ॥
भाव बहते, जल-सदृश, ले वेग हर दम कुछ नया !
हर व्यक्ति नव निर्माण का, संदेश लाता है नया !

भाव के अतिरेक से ही,
स्वप्न सुन्दर बन सकें ।
उत्तेजना जब पल्लवित हो,
स्वप्न सच्चे हो सकें ॥
वह स्वप्न तेरे नयन के, अब दीखते जग में यहाँ !
हर व्यक्ति नव निर्माण का, संदेश लाता है नया !

हर व्यक्ति अपनी आयु ही में,
जगत को है तोलता ।
जग सीखता उससे बहुत कुछ,
वह जभी, पर खोलता ॥
ऐसा न होता यदि कहीं, तो कौन फिर जीता यहाँ !
हर व्यक्ति नव निर्माण का, संदेश लाता है नया !

(३५)

फिर दुनिया ने ली अंगड़ाई !

सृष्टी का परदा बदल गया,
संसृति का मन कुछ डोल गया,
पूछा 'किसकी बारी आई'
फिर दुनिया ने ली अंगड़ाई !

पद-दलित आज फिर खड़े हुये,
पूँजीपति किस को कोस रहे,
जो अंतिम सांसे तोड़ रहे,
कहते 'कैसी बदली छाई'
फिर दुनिया ने ली अंगड़ाई !

कितनी जंज़ीरें टूट गईं,
बेड़ी खुल कर थी झूल रहीं,
वह लहरें उठ कर डूब गईं
है आज नाव तट पर आई,
फिर दुनिया ने ली अंगड़ाई !

साम्राज्यवाद था पड़ा हुआ,
वह तड़प रहा था विकल हुआ,
था आज लुटेरा लुटा हुआ,
वह बढ़ती बाढ़ न रुक पाई
फिर दुनिया ने ली अंगड़ाई !

ऊषा सी मंद हंसी हंस कर,
बादल-दल से अधर हिलाकर,
मलय-पवन सी उच्छवासें भर,
मतवाली दुनिया इठलाई,
फिर दुनिया ने ली अंगड़ाई !

(३६)

ओ ज्योतिर्मय, वह ज्योति कहां ?

आंसू बहते या घाव बहे,

या हम सब के प्राण जले,

यह नीरवता, यह अन्धकार,

देकर बापू तुम गये कहाँ ?

ओ ज्योर्तिमय वह ज्योति कहां ?

नोआखाली में प्राण रहे
अनशन में भी वह प्राण रहे,
ओ हत्यारे, वह प्राण लिये,
किस जननी से तू हाय जना,
ओ ज्योतिर्मय, वह ज्योति कहाँ ?

तूने किस के यह प्राण लिये,
छूँछे शरीर हम हाय हुए,
मृतप्राय हुये, निरुपाय हुए,
बिन मांझी के अब नाव यहाँ !
ओ ज्योतिर्मय वह ज्योति कहाँ ?

व्याकुल बादल भी आज हुए,
देखो लोटें करवट बदले,
सिसकी भर भर कर पवन बहे,
उसका पहला वह वेग कहाँ ?
ओ ज्योतिर्मय, वह ज्योति कहाँ ?

क्या किनारे पर लगेगी, इस भंवर से नाव मांझी !

द्वेष के इस भंवर में है,

राष्ट्र की नौका फँसी,

राष्ट्र चक्कर काटता है,

हिल रहा इतिहास भी ।

डगमगाते राष्ट्र को, अब तो बचा लो चतुर मांझी !

क्या किनारे पर लगेगी, इस भंवर से नाव मांझी !

उस प्रात को जब हम उठे,

तब संग आज़ादी उठी,

जग उठे अरमान सारे,

औ' थकी आशा उठी ।

उन इरादों को हमारे, डूबने दो यों न मांझी !

क्या किनारे पर लगेगी, इस भंवर से नाव मांझी !

किस किस जतन से थी जिलाई,
अधमरी आशा हृदय में ।
जब हृदय भी जल रहा था,
जलने न दी यह आस मन में ।
उस आस और विश्वास को, तुम डूबने देना न मांझी !
क्या किनारे पर लगेगी, इस भंवर से नाव मांझी !

जो लहर थी, साथ बहती,
वह मिली है उस भंवर में ।
जो हमारे साथ थे कल,
आज वह नूतन दलों में ।
इन दलों के दलदलों में, फंसने न देना नाव मांझी !
क्या किनारे पर लगेगी, इस भंवर से नाव मांझी !

साथियों का द्वेष बढ़ कर,
कपट में है जा मिला,
भंवर से जब नाव निकली,
तब डुबोने दल चला ।
नौका डुबोने जो चले, वह कहीं डूबें न मांझी
क्या किनारे पर लगेगी, इस भवर से नाव मांझी !

(३८)

इस कच्चे-घट में ओ कुम्हार पानी कब तक रह पायेगा !
क्या ज्ञान बढ़ाये मनुज भला जब तन मिट्टी में जायेगा !

ज्ञान की सिढ़ी अनगिनती,
पर मानव तेरी आयु बंधी,
कितना भी तू चढ़ जायेगा
पर बाकी होंगी कुछ सिढ़ी,

क्या आयु बाँध दी इस डर से अज्ञान कहाँ रह पायेगा !
इस कच्चे-घट में ओ कुम्हार पानी कब तक रह पायेगा !
क्या ज्ञान बढ़ाये मनुज भला जब तन मिट्टी में जायेगा !

तू एक बनाने वाला है
पर घट तेरे कैसे कैसे
कुछ की मिट्टी है खराब
जो बनते ही तोड़े होते,
जब तू समता रख नहीं सका, तो जग क्या सम हो पायेगा !
इस कच्चे-घट में ओ कुम्हार पानी कब तक रह पायेगा !
क्या ज्ञान बढ़ाये मनुज भला जब तन मिट्टी में जायेगा !

मानव की शक्ति अपरिमित है
जैसे होता रवि का प्रकाश
इस शक्ति से अज्ञान डरे
ज्यों डरे दुखी, सुख से तमाम,
वह मनुज शक्ति को तौल सके जो तारे नभ से ला देगा !
इस कच्चे-घट में ओ कुम्हार पानी कब तक रह पायेगा !
क्या ज्ञान बढ़ाये मनुज भला जब तन मिट्टी में जायेगा !

वह मानव की सत्ता जाने
जो सागर-लहरें गिन सकता,
वह मनु की संतति गिन सकता
जो तारे सारे गिन सकता,

जो मनु की संतति गिन न सका, वह मनु तक क्या जा पायेगा !
इस कच्चे–घट में ओ कुम्हार पानी कब तक रह पायेगा !
क्या ज्ञान बढ़ाये मनुज भला जब तन मिट्टी में जायेगा !

इस मिट्टी के कच्चे घट पर
यदि तू कुछ ताप चढ़ा देता,
जितना है मानव आज जिये
उससे ज्यादा यदि जी लेता,
तो तारे यदि ना ला पाता, इस नभ को तो छू ही लेता !
इस कच्चे–घट में ओ कुम्हार पानी कब तक रह पायेगा !
क्या ज्ञान बढ़ाये मनुज भला जब तन मिट्टी में जायेगा !

(३९)

भारत के बूढ़े नेताओ, यह बागडोर हमको दे दो,

या गरम खून हमसे ले लो !

बरसों से बन्द पड़ी थी जो,

तुम में उमंग वह मंद हुई,

ज्यों बंद पड़ा हो कूप अगर,

उसका जल क्या पीता कोई ।

हम में उमंग नव-जोश लिये, ज्यों निर्झर का बहता जल हो !

भारत के बूढ़े नेताओ, यह बागडोर हमको दे दो,

या गरम खून हमसे ले लो !

यह काल-चक्र का पहिया तो,

तुम पर मजबूरन घूम गया,

तुम लिए बुढ़ापा जभी चले,

तब यौवन तुम से रूठ चला ।

जीवन का सूरज डूब रहा, तुम कब तक उसको रोक सको !

भारत के बूढ़े नेताओ, यह बागडोर हमको दे दो,

या गरम खून हमसे ले लो !

कब तक यह सूखे पेड़ भला,
गिरने से बचायेंगे खुद को,
आंधी तो चलेगी कभी न कभी,
यह चूमेंगे तब पृथ्वी को ।
इन सूखी हड्डी के बल पर, तुम कब तक हिम्मत बांध सको !
भारत के बूढ़े नेताओ, यह बागडोर हमको दे दो,
या गरम खून हमसे ले लो !

यह उम्र तुम्हारी नहीं कि जो,
आंधी-पानी से खेल सको,
तुम में बाकी कुछ बूंद बची,
हैं खून कहां, जो फेंक सको ।
वह दिन आया नज़दीक कि जब, तुम अपने से खुद ऊब उठो !
भारत के बूढ़े नेताओ, यह बागडोर हमको दे दो,
या गरम खून हमसे ले लो !

(४०)

किस के यह भारी पावों की आहट से मानव दहल उठा !
क्या महायुद्ध फिर आज चला !

आज दिशाओं में कैसा यह,
शोर सुनाई पड़ता है,
यह दल बन्दी की बातें क्यों,
हर राष्ट्र, राष्ट्र से करता है ।
यह आपस में संशय—भय क्यों, जिससे मानव है सिहर उठा !
किस के यह भारी पावों की आहट से मानव दहल उठा !
क्या महायुद्ध फिर आज चला !

यह महायुद्ध की तैयारी,
पहले भी कितनी बार हुई,
यह महानाश की आग वही,
जो पहले कितनी बार जली ।
इन युद्धों से क्या पहले भी, कोई भी हल आसान हुआ !
किस के यह भारी पावों की आहट से मानव दहल उठा !
क्या महायुद्ध फिर आज चला !

सब युद्धों का परिणाम वही,
तलवार चले, या बम बरसे,
विध्वंस एक से होते हैं,
कोई जीते, कोई हारे ।
उस को क्या तुम विजयी कहते, जो सर्वनाश ही देख चुका !
किसके यह भारी पावों की आहट से मानव दहल उठा !
क्या महायुद्ध फिर आज चला !

सब कहते शांति पुजारी हम,
पर सेना सबकी बढ़ी-चढ़ी,
जितना सेना पर ख़र्च करें,
उसका आधा भी अगर कहीं,
सब ख़र्च करें यदि रोटी पर, तो युद्ध न हो यह रोटी का !
किस के यह भारी पावों की आहट से मानव दहल उठा !
क्या महायुद्ध फिर आज चला !

(४१)

मैंने दलितों के जीवन में झांका है, मैं कैसे चुप हो जाऊँ !

मैंने झोपड़ियों में जाकर,
मानव का जीना देखा है,
माँ को, माँ की मृदु-ममता को,
सिसकी भर लाते देखा है ॥

जो माँ का प्यार मिला मुझको, वह उबल पड़ा, कैसे दिल समझाऊँ !
मैंने दलितों के जीवन में झांका है, मैं कैसे चुप हो जाऊँ !

मैं जानूँ रोटी की कीमत,
कितनी, क्या, क्या हो सकती है,
मैं जानूँ परवशता की भी,
सीमा, दर सीमा होती है ।

मैंने परवश को रोते में हंसते देखा, मैं कैसे चुप रह जाऊँ !
मैंने दलितों के जीवन में झांका है, मैं कैसे चुप हो जाऊँ !

जब भरे जेठ की ज्वाला में,
पृथ्वी आंवा सी जलती है,
जब जन कुम्हलाये रहते हैं,
जब सांस थकी सी चलती है।
तब मैंने इनको श्रम-बिन्दु बहाते देखा, वह श्रम क्यों बह जाने दूँ!
मैंने दलितों के जीवन में झांका है, मैं कैसे चुप हो जाऊँ!

जब जाड़े की वह तीक्ष्ण ठंड,
तन—काट, कंपकपी भरती है,
जन तो जन, जब दिन भी सिकुड़ें
जब रात सिंधु सी बढ़ती है।
तब मैंने इनको ठंड लिपटे देखा, कैसे जीते, क्या बतलाऊँ!
मैंने दलितों के जीवन में झांका है मैं कैसे चुप हो जाऊँ!

दुख के कंधे पर हाथ धरे,
इनको मैंने चलते देखा,
दुख ऊब गया संग संग चलते,
पर, जग-मग पर, इनको देखा।
दुख की परिछाईं को यह साथ लिए कैसे दुख-दामन छुड़वाऊँ!
मैंने दलितों के जीवन में झांका है, मैं कैसे चुप रह जाऊँ!

(४२)

ओ मज़दूरों के शुभ-चिन्तक, तुम कहां छिपे आंदोलन में !
सन् '४२ के उस रण में !

जब भारत के सब सेनानी,
ले पकड़, धरे थे जेलों में ।
ज्यों पकड़े चन्दा—तारों को,
बालक जल की परिछाईं में ।
तब क्यों न आज की तरह बने तुम, भारत के नेता पल में !
ओ मज़दूरों के शुभ-चिन्तक, तुम कहां छिपे आंदोलन में !
सन् '४२ के उस रण में !

जब भारत की कमर तोड़
डाली अंग्रेज़ हुकूमत ने ।
जब मज़दूर किसानों पर
लाठी चलवाई गोरों ने ।
तब कहां तुम्हारा जोश सो रहा, क्या रूसी—मैदानों में !
ओ मज़दूरों के शुभ-चिन्तक, तुम कहाँ छिपे आंदोलन में !
सन् '४२ के उस रण में !

आज़ादी के अरमान लुटे,
जब सन् सत्तावन के रण में।
जब भारत के प्राण डसे थे,
उस जलियाँ वाले विप्लव में।
तब नहीं तुम्हारा नाम सुन पड़ा, गलती से भी कानों में!
ओ मज़दूरों के शुभ-चिन्तक, तुम कहाँ छिपे आंदोलन में!
सन् '४२ के उस रण में!

माना कि बने हो नेता तुम,
बातें करके ऊँची, ऊँची।
यदि साम्यवाद ही लाना है।
तो भारतीय हो, न कि रूसी।
भारतीय–दिल पर क्यों कर रूसी–दिमाग का असर पड़े!
ओ मज़दूरों के शुभ-चिन्तक, तुम कहाँ छिपे आंदोलन में!
सन् '४२ के उस रण में!

(४३)

मैं भारत की रज में जन्मा, मैं क्यों झाकूं पर-राष्ट्रों में,
जब जीना मरना भारत में !

उसको रहने का क्या हक है,
जो देश-द्रोह भी कर सकता,
उसको जीने का क्या हक है,
जो जननी को भी डस सकता,

ऐसे नीच नमूने यह, जब-तब ही मिलते लाखों में !
मैं भारत की रज में जन्मा, मैं क्यों झाकूं पर-राष्ट्रों में,
जब जीना मरना भारत में !

जिसको स्वदेश का मान नहीं,
जिसको उस पर अभिमान नहीं,
वह है उस नारी—समान,
जिसको निज पति पर नाज़ नहीं,
उससे तो अच्छी वह वैश्या, जो खुली सभी व्यवहारों में !
मैं भारत की रज में जन्मा, मैं क्यों झाकूं पर-राष्ट्रों में,
जब जीना-मरना भारत में ।

जब एकाकी क्षण मुझको,
बचपन की याद दिलाते हैं,
जब अतीत के भाव मुझे,
विस्मृति में खींचे लाते हैं,
तब स्वदेश की टीस उठे, मेरे इन उलझे प्राणों में !
मैं भारत की रज में जन्मा, मैं क्यों झाकूं पर-राष्ट्रों में,
जब जीना-मरना भारत में !

यौवन की बहती उमंग,
जब बहका उठती है मुझको,
उन अरमानों की आकृति, जब
कुछ धूमिल सी दीखी मुझको,

तब उन विगत–विचारों के संग, राष्ट्र नाचता आखों में !
मैं भारत की रज में जन्मा, मैं क्यों झाकूं पर–राष्ट्रों में,
जब जीना–मरना भारत में !

मेरे कण कण में राष्ट्र बसा,
मेरा कण, कण है भारत का,
जीते जी तो, ऐसे संग हूँ,
मरने पर कण, कण से मिलता,
क्या साथ छुटा सकता कोई, जो मिला राष्ट्र की बाहों में !
मैं भारत की रज में जन्मा, मैं क्यों झाकूं पर–राष्ट्रों में,
जब जीना–मरना भारत में !

(४४)

उस सत्य अहिंसा की प्रतिमा को, तोड़ सकोगे क्या छल से !
गांधी के गौरव-गरिमा को, तुम मिटा सकोगे क्या बल से !

कितने अत्याचारों को सहकर,
हमने यह प्रतिमा पाई,
इसके कण कण में प्रतिबिम्बित,
शोषित वर्गों की परिछाई ।

घर घर में ज्योति–जगाई जो,
वह ज्योति इसी से थी पाई,
यह भारतीय पहला था जो,
ना देख सका शोषण-काई ।

जो बरसों के आतंकों पर, आतंक बना निज–बुध बल से !
उस सत्य-अहिंसा की प्रतिमा को, तोड़ सकोगे क्या छल से,
गांधी के गौरव-गरिमा को, तुम मिटा सकोगे क्या बल से !

अथक
कितने अकथ परिश्रम से यह,
पूर्ण रूप को ले पाया,
कितने एहसासों में खो, तब
दिव्य–मार्ग इसने पाया ।

जब भूल गया था जग खुद को,
तब इसने जग को पाया,
बस एक अहिंसा के बल पर,
हिंसा को घायल कर लाया ।

जब सब प्रपंच से हार गया, तो टेक दिये घुटने जग ने !
उस सत्य-अहिंसा की प्रतिमा को तोड़ सकोगे क्या छल से,
गांधी के गौरव-गरिमा को तुम, मिटा सकोगे क्या बल से !

यह व्यक्ति नहीं, हैं महापुरुष,
यह देव कहायें मनुजों में ।
यह रोज़-रोज़ उत्पन्न न हों,
यह पैदा होते कल्पों में,
यह प्रतिमा भी यदि तोड़ सको,
तब भी जीवित यह कण कण में,
इनका संदेश लिये देखो,
हर बालक-युवा आज मन में ।

जो मिटा नहीं है गोली से क्या मिटा सकोगे प्रतिमा से !
उस सत्य-अहिंसा की प्रतिमा को तोड़ सकोगे क्या छल से,
गांधी के गौरव-गरिमा को तुम मिटा सकोगे क्या बल से !

(४५)

वह अतीत के स्वप्न हमारे,
आज कदाचित सच होंगे ।
भूखे—नंगों के दल के दल,
हर जगह न अब फिरते होंगे ॥१॥

आज धरा- मुस्करा उठी,
जब खेती भी लहलहा उठी ।
आज मेघ हंस रहे यहाँ,
जब वर्षा बारंबार हुई ॥२॥

आज़ादी को तड़प रहे,
जो देश, हमें वह ताक रहे ।
दे रहे दुहाई भारत की,
संग्राम आज फिर ठान रहे ॥३॥

पूछो अफ़रीकी वीरों से,
या इन्डोनीज़ियन धीरों से।
जो भारत के चढ़ते-रवि से,
किरणें पाकर, लड़ते तम से ॥४॥

आज़ादी ही नहीं मिली,
हमने पाया, विश्वास नया।
दृढ़ता पैरों पर आन पड़ी,
जब मंसूबों का साथ हुआ ॥५॥

जो कांप रहे थे पग कल तक,
वह आज जमे हैं धरती में।
जो खेल रहे थे कल हमसे,
वह बने खिलौना आखिर में ॥६॥

जो बन्द पड़े कल जेलों में,
वह बागडोर हैं आज लिये।
जितने सब अंग्रेज़ी--दूत यहां,
वह गिन-गिन करके लाद दिये ॥७॥

यह नहीं राज्य का उलट-फेर,
यह नहीं भाग्य का अजब-खेल।
यह आज़ादी की आग लगी,
साम्राज्यवाद को गई मेट ॥८॥

हम आज सांस लेते खुल कर,
अब नहीं जी रहे घुट-घुट कर।
जितनी विकास की कलियां हैं,
वह आज खिल रहीं रह रह कर ॥९॥

हम सीना ताने जभी चले,
भारत का सीना फूल गया।
हमने विकास के कदम धरे
नव भारत सब दुख भूल गया ॥१०॥

(४६)

जो तूफ़ानी–लहरों पर खड़े रहे, उनको सागर का क्या डर है!
जो अंग्रेज़ी–आतंकों को झेले, उनको किस डर से अब डर है!

जो सिर से कफ़न बाँध करके,
आज़ादी लेने निकल पड़े,
रोते सुहाग को छोड़ चले,
आकाश गिरा कर, अबला पै,

जब आज़ादी ली हंसते–हंसते, वह आफ़त क्या जिसका डर है!
जो तूफ़ानी लहरों पर खड़े रहे, उनको सागर का क्या डर है!
जो अंग्रेज़ी–आतंकों को झेले, उनको किस डर से अब डर है!

जैसे शिविरों में जाकर के,
घायल लेता विश्राम ज़रा,
ऐसे ही गोरों को निकाल,
कुछ ठहरा, वीरों का जत्था,

जो बोझ लदा था बरसों से, उसको उतार, विश्राम किया, तो क्या डर है !
जो तूफ़ानी लहरों पर खड़े रहे, उनको सागर का क्या डर है !
जो अंग्रेज़ी--आतंकों को झेले, उनको किस डर से अब डर है !

क्या थके पैर चल पाते हैं,
क्या घायल भी लड़ पाते हैं,
आहत–पंछी ही जाने,
कब टूटे पर, जम पाते हैं,

जो रहे पसीने को निचोड़, जाने, उसकी क्या कीमत है !
जो तूफ़ानी लहरों पर खड़े रहे, उनको सागर का क्या डर है !
जो अंग्रेज़ी--आतंकों को झेले, उनको किस डर से अब डर है !

माना कि उलझनें हैं भारी,
माना कि झंझटें हैं काफ़ी,
पर रत्न सरीखे वीरों से,
है देश हमारा कब खाली,

जो उलझन को रौंदे पैरों से, वह उलझन भी क्या उलझन है !
जो तूफ़ानी-लहरों पर खड़े रहे, उनको सागर का क्या डर है !
जो अंग्रेज़ी-आतंकों को झेले, उसको किस डर से अब डर है !

उन्नति पर चलने वालों की,
क्या टोली रुकी कभी पहले,
झरने सा लेकर वेग नया,
बढ़ते आगे, पर नहीं रुके,

जिनके रग में निर्झर की गति है, वे गति-हीन न हो सकते पल में !
जो तूफ़ानी लहरों पर खड़े रहे, उनको सागर से क्या डर है !
जो अंग्रेज़ी-आतंकों को झेले, उनको किस डर से अब डर है !

जो बरसों से बहती नदियाँ,
उनमें यह बांध बनायेंगे,
पानी से बिजली पैदा कर,
बिजली को बस में लायेंगे,

तब देखोगे, बिजली से, सर्दी-गर्मी को, काबू कर लेंगे पल में !
जो तूफ़ानी-लहरों पर खड़े रहे, उनको सागर का क्या डर है !
जो अंग्रेज़ी-आतंकों को झेले, उसको किस डर से अब डर है !

कुछ और समय देकर देखो,
यह क्या से, क्या कर सकते हैं,
बिजली से पानी बरसा कर,
बंजर को लहरा सकते हैं,

तब देखोगे, मिल और कारखानों के तातें लग जायेंगे पल में !
जो तूफ़ानी-लहरों पर खड़े रहे, उनको सागर का क्या डर है !
जो अंग्रेज़ी-आतंकों को झेले, उनको किस डर से अब डर है !

(४७)

आज़ाद हिन्द में अनपढ़ को, कोई भी तुम स्थान न दो !
साथी लो यह कसम उठाओ—कोई अनपढ़ अब न हो !

मुट्ठी भर अपने सैनिक,
कैसे बदलेंगे भारत को,
जब जनता जाहिल की जाहिल,
क्यों उठा सकेंगे स्तर को,

वह बातें लौट पड़ेंगी सब, इनसे चाहे कुछ भी कह लो !
आज़ाद-हिन्द में अनपढ़ को, कोई भी तुम स्थान न दो !
साथी लो यह कसम उठाओ – कोई अनपढ़ अब न हो !

इन अनपढ़ में, औ' पशुओं में,
अन्तर कितना, अन्तर कैसा,
दो सौतेले-भाई में अन्तर,
होता है जितना, जैसा,
पशु के समान सिर हिलवा लो, चाहे कुछ भी तुम बात कहो !
आज़ाद हिन्द में अनपढ़ को, कोई भी तुम स्थान न दो !
साथी लो यह कसम उठाओ – कोई अनपढ़ आज न हो !

भारत की असली आबादी,
रहती इन पिछड़े गावों में,
भारत की असली बरबादी,
भी रुकी इन्हीं के हाथों में,
बस मुखिया को फुसलाना था, कि इनको भी तुम बहका लो !
आज़ाद-हिन्द में अनपढ़ को, कोई भी तुम स्थान न दो !
साथी लो यह कसम उठाओ – कोई अनपढ़ आज न हो !

जितने आकाश में तारे हैं,
उतने अनपढ़ हैं भारत में,
ज्यों मछली जीती सागर में,
अनपढ़ यों जीता भारत में,

यह जीना भी क्या जीना है, इस जीने पर तुम लानत दो !
आज़ाद-हिन्द में अनपढ़ को, कोई भी तुम स्थान न दो !
साथी लो यह कसम उठाओ – कोई अनपढ़ आज न हो !

इतिहास जानते यह इतना,
इनके पुरखे रोटी खाते,
विज्ञान जानते यह इतना,
हल से खेतों को जुतवाते,

इनके बाबा, परबाबा भी, पढ़वाते थे इन चिट्ठी को !
आज़ाद-हिन्द में अनपढ़ को, कोई भी तुम स्थान न दो !
साथी लो यह कसम उठाओ – कोई अनपढ़ आज न हो !

इनके दिमाग के ढांचे को,
नव-सांचे में ढलना होगा,
बरसों की जो तह जमी हुई,
वह अलग-अलग धुनना होगा,

अपने दिमाग के रेशे को यह देख सकें, ऐसा कर दो !
आज़ाद-हिन्द में अनपढ़ को, कोई भी तुम स्थान न दो !
साथी लो यह कसम उठाओ – कोई अनपढ़ आज न हो !

दीवारों पर लिखी-लिखावट,
पढ़ सकें, इन्हें ऐसा कर दो,
जग में क्यों हो रहा शोर,
यह जान सकें, ऐसा कर दो,

जीवन का अभिप्राय, इन्हें तुम, चुपके से बतला भर दो !
आज़ाद-हिन्द में अनपढ़ को, कोई भी तुम स्थान न दो !
साथी लो यह कसम उठाओ – कोई अनपढ़ आज न हो !

(४८)

यह विलास की कविता का युग नहीं, नहीं युग रोने का !
नव-युग का प्रारंभ हुआ यह, नये बीज के बोने का !

इन मेघों को घिर आने दो,
कवि के भाव न बहकेंगे,
आज कामिनी के केशों की,
सुधि को बेसुध कर देंगे,

इस बादल में देख रहा कवि, भूखों का दल क्यों निकला !
यह विलास की कविता का युग नहीं, नहीं युग रोने का !
नव-युग का प्रारंभ हुआ यह, नये बीज के बोने का !

बूँदे जो गिर रहीं गगन से,
इनको भी गिर जाने दो,
यह विरहिन के अश्रु नहीं
हैं, जो चुभते थे प्राणों को,
इन बूंदों में देख रहा कवि, बहा पसीना, किस किस का !
यह विलास की कविता का युग नहीं, नहीं युग रोने का !
नव-युग का प्रारंभ हुआ यह, नये बीज के बोने का !

लता पेड़ से मिलती है तो,
मिलन-भाव पैदा होते,
किंतु नहीं यह मिलन कि जिसमें,
विरही औ' विरहिन खोते,
इसी मिलन में देख रहा कवि, निर्धन से धनवान मिला !
यह विलास की कविता का युग नहीं, नहीं युग रोने का !
नव-युग का प्रारंभ हुआ यह, नये बीज के बोने का !

चंदा के संग निकल पड़े,
जब धुली-चाँदनी अम्बर में,
तो नहीं देखता पहिले सा,
कवि दो प्रेमी को उस क्षण में,

क्या भारत के साथ चली, वैभव-श्री, कवि यह सोच रहा !
यह विलास की कविता का युग नहीं, नहीं युग रोने का !
नव-युग का प्रारंभ हुआ, यह नये बीज के बोने का !

नये भाव यह, नये बीज यह,
नई भूमि पर तुम बोओ,
नव-विचार लहलहा उठेंगे,
समय खिसकता, मत खोओ,

और राष्ट्र सब देख रहे हैं, कदम उठा है, किस किस का !
यह विलास की कविता का युग नहीं, नहीं युग रोने का !
नव-युग का प्रारंभ हुआ, यह नये बीज के बोने का !

(४६)

भारतीय-खून तुम में बहता, यह सपने में भी मत भूलो !

यदि गंगा सा यह पावन है,

तो सागर की यह शांति लिये,

सागर भी ऐसा है जिसने,

तूफ़ान सैकड़ों झेल लिये,

यह वही खून जो खौल उठा, पहले कब कब, यह मत भूलो !

भारतीय खून तुम में बहता, यह सपने में भी मत भूलो !

इसी खून को पाने को तो,

स्वयं राम ने जन्म लिया,

इसी खून को पाकर के तो,

त्याग भरत का बड़ा हुआ,

इसी खून के बल पर सीता, रहीं लंक में, मत भूलो !

भारतीय-खून तुम में बहता, यह सपने में भी मत भूलो !

इसी खून की कसम उठाई,
तो सांगा, संग्राम बने,
जिनको, जिनके घावों को,
इतिहास आज तक अभी गिने,
वही खून उमड़ा चेतक में, प्राण दिये क्यों, मत भूलो !
भारतीय-खून तुम में बहता, यह सपने में भी मत भूलो !

इसी खून के बल पर तो,
गांधी भी निधड़क बढ़े चले,
यही खून जब गिरा धरा पर,
भारतवासी एक हुये,
अंग्रेज़ों ने भारत छोड़ा, आखिर क्यों, यह मत भूलो !
भारतीय-खून तुम में बहता, यह सपने में भी मत भूलो !

इसी खून की एक बूंद भी,
यदि तुम में होगी बाकी,
तो न हाथ पर हाथ धरे
बैठोगे तुम भारतवासी,
इस भरत-खंड में राम-राज्य पैदा करना है, मत भूलो !
भारतीय-खून तुम में बहता, यह सपने में भी मत भूलो !

(५०)

बिन आंसू के भगवान तुम्हारी दुनिया क्या नंगी रहती !
आंसू पैदा किये बिना, क्या दुख-परिभाषा ना बनती !

यदि आंसू ही यह देने थे,
तो भेद-भाव क्यों रच डाला,
निर्धन को आंसू पीने को,
औ धनिकों को उस पर ताला,
धन नहीं बराबर बांट सके, तो बांटे होते आंसू ही !
बिन आंसू के भगवान तुम्हारी, दुनिया क्या नंगी रहती !

जो खेल रहे हैं आंसू से,
उन से तुम भी खेला करते,
जो बने खिलौना इस जग में,
उनको ही तुम तोड़ा करते,
क्यों नहीं तोड़ते कांच ज़रा, कच्चे-घट तो टूटेंगी ही !
बिन आंसू के भगवान तुम्हारी, दुनिया क्या नंगी रहती !

निर्धन की ठंडी-आहों को,
तुम आंसू से ठंडी करते
धनवानों की सब चाहों को,
बिन-चाहे तुम पूरी करते,
क्या तुमने भी वह मार्ग लिया, जो सीधा सादा सस्ता भी !
बिन आंसू के भगवान तुम्हारी, दुनिया क्या नंगी रहती !

जो नास्तिक बनकर झूम रहे,
उनके तुम कितने हो करीब,
जो पूजा करके हार गये,
तुम रूठे, क्यों कि, वह गरीब,
सब नास्तिक बनना चाहेंगे, यदि रहा हाल कुछ दिनों यही !
बिन आंसू के भगवान तुम्हारी, दुनिया क्या नंगी रहती !

क्या रुके हुये तुम इस दिन को,
जब मनुज सिखावे तुम्हें सीख,
क्या नहीं छोड़ पाये नटनागर,
उलहनों की प्राचीन-रीति,
आंसू समेट लो भारत से, ज्यों नयन समेटे नींद घनी !
बिन आंसू के भगवान तुम्हारी, दुनिया क्या नंगी रहती !
आंसू पैदा किये बिना, क्या दुख-परिभाषा ना बनती !

(५१)

आज़ादी ही जिसका सुहाग, उस भारत-मां की जय बोलो !

जिसके सुअनों का गौरव,

बढ़ता जैसे सागर अपार,

जिसके तनया का सतीत्व,

ऊंचा इतना, जितना कि चांद,

सब देशों में यदि रत्न मिलें, तो बांझ कहेगी क्या बोलो !

आज़ादी ही जिसका सुहाग, उस भारत–मां की जय बोलो !

आज़ादी कायम रखने को,

किस किस का कितना खून गिरा,

ज्यों निर्धन जाने कैसे वह,

चोरों से कुछ-धन बचा सका,

यदि आज़ादी सब रख पाते, तो क्या गुलाम बिकते, सोचो !

आज़ादी ही जिसका सुहाग, उस भारत–मां की जय बोलो !

हिमाचल सा जिसका किरीट,
कोई न अभी तक छू पाया,
मां अंचवन करती है मानो,
गंगा की पावन धारा का,
इस जल में क्या कुछ ऐसा है, विज्ञान बिचारे से पूछो !
आज़ादी ही जिसका सुहाग, उस भारत-मां की जय बोलो !

यह हरी हरी हरियाली तो,
मां की सारी का पल्ला है,
नरबदा करधनी कटि की है,
औ' सिन्ध गले की माला है,
अब तक न विदेशी वह जन्मा, जो ले पाता इन गहनों को !
आज़ादी ही जिसका सुहाग, उस भारत-मां की जय बोलो !

शायद जननी यह सोच रही,
क्या वह दिन फिर से आने को,
जब तक्षशिला था केन्द्र यहाँ,
जब जगत टेकता माथे को,
माँ ! तेरी शपथ आज लेते, हम ला देंगे फिर उस दिन को !
आज़ादी ही जिसका सुहाग, उस भारत मां की जय बोलो !

(५२)

तुम अछूत से छूत करो, क्यों धनी न तुमसे छूत करें !

मंदिर मंदिर के दरवाजे,

क्यों बंद किये तुमने बोलो,

पत्थर की प्रतिमा तक में जब,

तुम छुआ-छूत का डर मानो,

क्या अछूत के लिये, अछूते ईश्वर भी दो—चार बनें !

तुम अछूत से छूत करो, क्यों धनी न तुमसे छूत करें !

तुम अछूत के संग बैठ,

संग-संग खाकर तो देखो,

आकाश गिरेगा ना भू पर,

या धरा हिलेगी ना, देखो,

यदि ईश्वर करता छुआ छूत, तो गगन—धरा क्यों एक बनें !

तुम अछूत से छूत करो, क्यों धनी ना तुमसे छूत करें !

तू समाज से क्यों डरता,
वह तो तेरी परिछांई है,
ज्यों चंदा देखे नभ पर चढ़,
अपना धब्बा पानी में,
तू समाज के सिर मढ़ता, वह तो दुर्बलता तेरी रे !
तुम अछूत से छूत करो, क्यों धनी न तुमसे छूत करें !

इन अछूत को, अपने से,
तुम मौके देकर तो देखो,
इस जग की हो रही दौड़,
में पहले से तुम क्यों दौड़ो,
तो तुमसे भी दो चार कदम, यह बढ़ जायेंगे, इस जग में !
तुम अछूत से छूत करो, क्यों धनी न तुमसे छूत करें !

तुम यही चाहते धनी तुम्हें,
दुत्कार सुनाते रहें सदा,
यदि यही चाहते भेद-भाव,
यह और बढ़े दिन-रात नया,
तो मुझको ही पैदा होना था, क्या तेरी इस दुनिया में !
तुम अछूत से छूत करो, क्यों धनी न तुमसे छूत करें !

(५३)

ओ मानव, तूने जन्म लिया क्यों, यह भी तो सोचा होता !

क्या इसीलिये यह जन्म हुआ,

कि पेट भरो तुम कैसे भी,

क्या इसी लिये यह तन पाया,

तुम खा लो, पी लो, सो लो भी,

यह तो पशु भी कर लेते हैं, क्यों मनुज बना, सोचा होता !

ओ मानव, तू ने जन्म लिया क्यों, यह भी तो सोचा होता !

तेरी इन्द्रिय कुछ ज्ञान लिये,

वह ज्ञान समेटा रोटी ने,

जो दैवी-शक्ति पास तेरे,

वह बंधी नहीं, बांधी तूने,

जो ज्ञान नहीं पशु-पक्षी में, क्यों मिला तुझे, सोचा होता !

ओ मानव, तू ने जन्म लिया क्यों, यह भी तो सोचा होता !

वह ऋषि-मुनि भी तो मनुज,
जिन्होंने ज्ञान दिया था जग में,
वह भूखे-प्यासे नहीं रहे,
पर नहीं फंसे तुझ से जग में,
इस जग के भी जो ऊपर है, कुछ उसका भी सोचा होता
ओ मानव, तू ने जन्म लिया क्यों, यह भी तो सोचा होता

कैसे धन मैं कुछ जोड़ सकूं,
दिन-रात फंसा इस उलझन में,
जीते जी तो रोटी मिलती,
यह धन खायेगा, मरने पे ?
जो दुनिया दी दे धन की, क्या रहने काबिल, सोचा होता
ओ मानव, तू ने जन्म लिया क्यों, यह भी तो सोचा होता !

जग तो पीछे पीछे चलता,
जो राह दिखादे कोई भी,
तू जग से आगे आ कर आ,
जग पकड़ेगा तेरी अंगुली,
तू जग के लिये नहीं, जग तेरे लिये हुआ, यही सोचा होता !
ओ मानव, तू ने जन्म लिया क्यों, यह भी तो सोचा होता !